जाग मछंदर जाग

समकालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आलेख

सुभाष राय

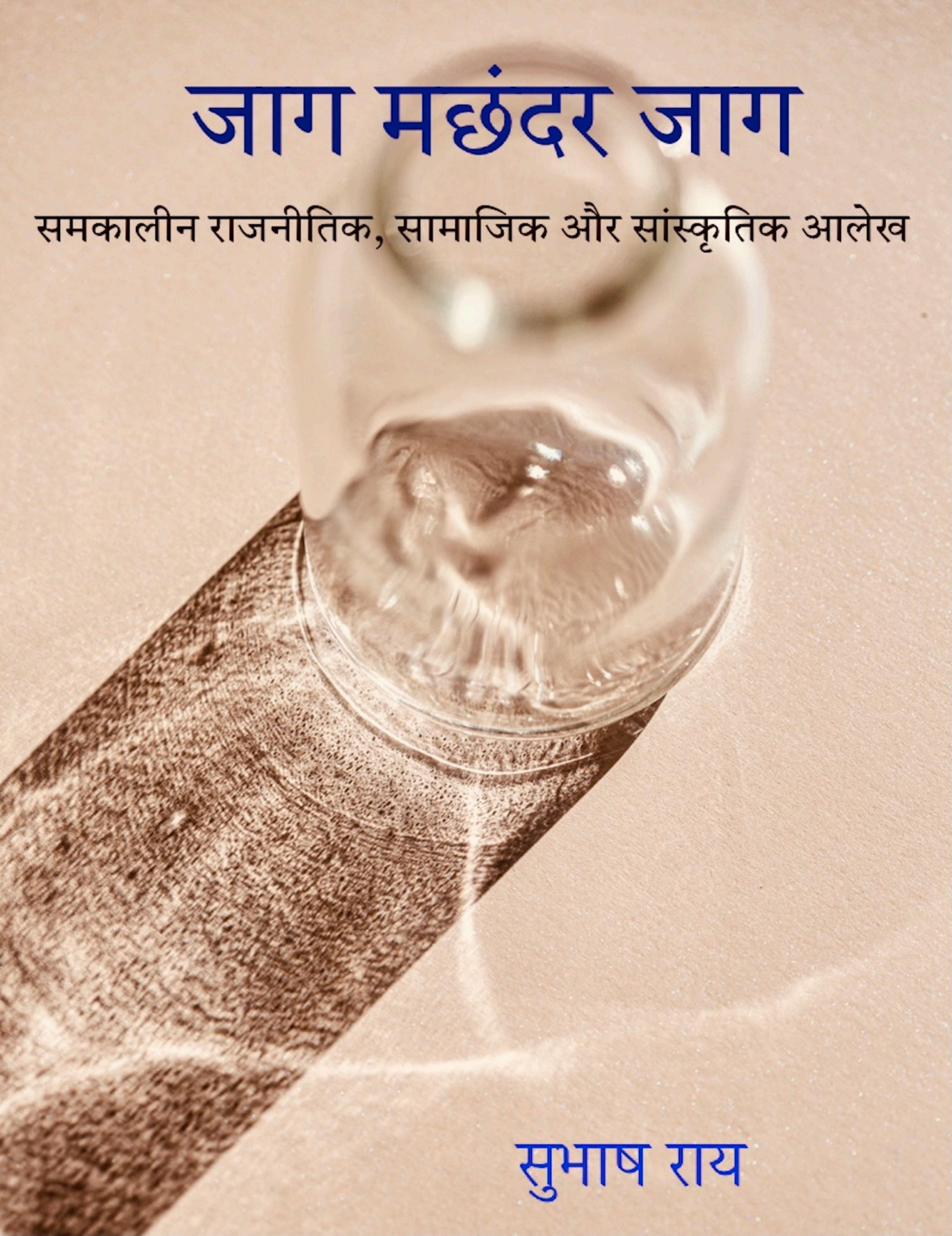

जाग मछंदर जाग

(समकालीन राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक आलेख)

सुभाष राय

माँ और पिता को

समर्पित

जिनका रक्त

मेरी धमनियों में

बह रहा है

विचार के स्फुलिंग

सभी चाहते हैं कि दुनिया बेहतर हो, ज्यादा मानवीय हो, सहिष्णु हो, सभ्य हो। कोई ऊंच-नीच न हो। सबको बराबरी के अवसर हों। आदमी केवल आदमी हो। वह जातियों से, सम्प्रदाय से, वर्ण से न पहचाना जाय। और कठिन समय में भी वह आदमी बने रहने की कुवत रखता हो। सबको अपना जीवन अपने ढंग से जीने की आजादी हो, अपने रस्ते खुद तय करने की स्वतंत्रता हो। सब एक दूसरे से प्यार करें। समाज और सत्ता की जिम्मेदारी है कि वे ऐसी परिस्थितियां बनाने में निरंतर सक्रिय रहें, जहां सबको अपना हक मिलने की अधिकतम संभावना हो, जहां समानता के मूल्यों का आदर हो, जहां जुल्म न हो, अन्याय न हो।

परंतु व्यावहारिक दुनिया में जब ऐसा होता नहीं दिखता है तब भीतर कहीं गहरे एक वेदना जन्म लेती है, एक क्षोभ पैदा होता है और वही किसी भी असंतुलन के खिलाफ संघर्ष के लिए प्रेरित करता है। न्याय की, हक की, अधिकार की, बराबरी की यह लड़ाई भौतिक स्तर पर भी लड़ी जा सकती है और शब्दों के जरिये भी। बदलाव के लिए सड़क पर आंदोलन एक बड़ी बात है लेकिन किसी भी अन्याय, हकमारी या बुराई के खिलाफ विरोध दर्ज कराना भी कोई छोटी बात नहीं है। यह चुप रह जाने से

तो बेहतर है। तटस्थता के अपराध से तो अच्छा है। शब्दों की ताकत और रफ्तार अपना काम करती है। शब्द तेजी से दूसरों तक पहुंचते हैं, उन्हें प्रेरित करते हैं और कई बार आंदोलन की जमीन बनाते हैं या उसे और तेज करने में सहायक बनते हैं।

आज का समय इतना छलिया है कि कई बार शब्दों की ताकत पर भी यकीन नहीं होता, कई बार वे सचमुच निस्तेज साबित होते हैं लेकिन हमेशा नहीं। इस बात पर बार-बार बहस होती आयी है कि लिखने की सामाजिक सार्थकता क्या है, क्या लिखना कुछ बदल सकता है, कुछ नया रचने की प्रेरणा बन सकता है? इसका जवाब नहीं में तो नहीं ही हो सकता है। तमाम रचनाधर्मी, आलोचक और जीवन के व्याख्याकार मानते आये हैं कि दुनिया को बदलने में, उसे ज्यादा मानवीय बनाने में लेखन का, साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। कला और संस्कृति हमेशा ही मनुष्य के अंतःकरण का परिष्कार करती रही है। कहानी, कविता, नाटक और अन्य ललित कलाओं का इस दृष्टि से महत्वपूर्ण योगदान होता है।

गद्य की मान्य विधाओं को छोड़ दें तो रचनात्मक एकाग्रता के साथ लिखा गया वैचारिक गद्य भी यह काम कर सकता है, बल्कि ज्यादा प्रभावशाली ढंग से कर सकता है। भाषण के प्रभाव से कौन परिचित नहीं है। दुनिया ने अनेक श्रेष्ठ वक्ताओं के भाषण का चमत्कार देखा है। सभी जानते हैं कि किस तरह एक वक्तृत्वकला संपन्न

व्यक्ति किसी समूह के मन को बदल देता है, आंदोलित कर देता है और उसे वांछित दिशा में ढकेल देता है। यह एक कला है। ऐसे ही अच्छे विचार गद्य का सृजन भी एक कला है। इसी अर्थ म़ें विचार गद्य का भी रचनात्मक महत्व है। उसमें भाषण से भी ज्यादा शक्ति होती है। मेरे शिक्षक श्रीराम वर्मा कहा करते थे कि मंजा हुआ गद्य ही कविता है। गद्य अगर पूरी तरह कविता न भी हो तो भी उसमें जितनी काव्यमयता होगी, जितनी प्रवाहमयता होगी, वह उतना ही प्रभावशाली होगा। वह पढ़ने या सुनने वाले के हृदय में, मन में जितनी सघनता और तरलता के साथ उतरता चला जाय, उतना ही सफल है। यह सफलता ही उसका कलात्मक और रचनात्मक मूल्य है। अन्य कला विधाओं की अपेक्षा गद्य में विचार के तार्किक विस्तार की गुंजाइश ज्यादा होती है। इसीलिए वह प्रभावक्षमता में भी ज्यादा सार्थक होता है।

मेरा वैचारिक गद्य भी ऐसा ही है। अपने आस-पास जहां कहीं भी अवरोध, असंतुलन दिखायी पड़ता है, अन्याय, गैर-बराबरी और भेदभाव नजर आता है, उसे स्वीकार कर पाना मेरे लिए कठिन हो जाता है। कई बार मैं उससे भौतिक स्तर पर भी लड़ता हूं, लडंता रहता हूं लेकिन उसके प्रति अपने क्षोभ को, वेदना को, असहमति और प्रतिरोध को दर्ज करने की प्रबल बेचैनी भौतिक लड़ाई के साथ ही लिखने को भी मजबूर करती है। विचार का एक स्फुलिंग कौंधता है और फिर वह अपना तार्किक विस्तार ग्रहण करता हुआ आगे बढ़ लेता है। कह सकता हूं कि मेरा लेखन मेरे भीतर

सघन से सघनतर होते क्षोभ का परिणाम है। मुझे लगता है कि इसी तरह और लोग भी क्षुब्ध होंगे, गुस्से में होंगे, पर व्यक्त नहीं हो पा रहे होंगे। मेरा लिखना अगर ऐसे कुछ लोगों को भी व्यक्त होने या सड़क पर आने को उकसा सके तो यह मेरे लिखने की सार्थकता होगी।

मेरे अग्रज, मित्र और कथाकार बलराम निरंतर मुझे प्रेरित न करते रहते तो यह पुस्तक सामने नहीं आ पाती, इसलिए इसके प्रकाशन का सारा श्रेय उन्हीं को। नमन प्रकाशन के अरविंद जी की रुचि और सक्रियता के बिना भी यह सब संभव नहीं था, उनके प्रति आभार जताकर अपनापन कम नहीं करना चाहूंगा।

सुभाष राय

गोमतीनगर, लखनऊ

अनुक्रम

मुक्ति के मायने	10
मेरा दरद न जाने कोय	15
लक्ष्मण रेखा के पार	20
पृथिव्याम् पुत्रास्ते	25
आज का महाभारत	34
मुझे पागल ही रहने दो	39
अप्प दीपो भव	45
जले बिना रोशनी कहीं	52
उजाले चुनती स्त्रियां	57
आस-पास लाक्षागृह	62
हमारी आप की गीता	67
लिये लुकाठा हाथ	72
सरोकार का पाखंड	82
समय के आगे शब्द	88
विक्षोभ का एक पल	95

प्रगतिशीलता के मायने	101
साहित्य के मठ	106
कमजोर पड़ते शब्द	111
शब्दों से बाहर	116
हमारी अस्मिता पर संकट	121
जंगल की भाषा बोलता आदमी	129
चढ़ै न दूजो रंग	137
ताकि सपने जिन्दा रहें	142
असहमति की ऊर्जा	148
भय से मुक्ति	153
समय की शिला पर	157
मैं नाच्यो बहुत गुपाल	161
बाकी हैं आज़ादी का संग्राम	165
नहीं माफ़ी नहीं मिलेगी	170
कब उठ खड़े होंगे लोग	174
जनता को चलाना होगा डंडा	180

जाति न पूछो साधु की 186

ये मारक भटकाव 191

विश्वास का संकट 196

अँधेरे के ख़िलाफ़ 199

आदमी बने रहना कठिन 203

सिपाही हो, सोचना नहीं 208

सत्ता का लूट चरित 214

पल-पल पाखंड 219

कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो 224

विनाश के द्वार पर 229

समय के नब्ज पर हाथ 237

हे, पिता! मनुष्य को बचा लो 241

रास्ते बनाते हैं जो 244

भौतिक तर्कों के आर-पार 250

विज्ञान और अध्यात्म 259

कृष्ण को क़ैद से निकालें 264